अफ्रीकी राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध और निम्न पूंजीपति वर्ग की भूमिका

बीसवीं सदी में विभिन्न राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों में विभिन्न वर्गो का नेतृत्व रहा है। कई देशों में बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में तो कई देशों में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में तो कतिपय देशों में निम्न बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध लड़े गये। चीन, वियतनाम, कोरिया, लाओस जैसे देशों में यह युद्ध सर्वहारा वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में लड़ा गया। भारत में इस युद्ध का नेतृत्व सुधारवादी समझौतापरस्त बुर्जुआ वर्ग के हाथ में था। अफ्रीका के कई मुल्कों में राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध का नेतृत्व निम्न बुर्जुआ वर्ग के हाथों में रहा है। इसके नेतृत्व में जिम्बावे, जाम्बिया जैसे मुल्कों में जुझारू सशस्त्र आंदोलन के जरिये रंगभेद की समाप्ति की गयी तथा औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति हासिल की गयी। प्रस्तुत लेख की विषय वस्तु अफ्रीका में निम्न पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में लड़े गये राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध हैं।

लेख में पहले सामान्य टिप्पणी निम्न पूंजीपति वर्ग के चरित्र, उसके द्वारा तथा उसके नेतृत्व में अफ्रीका महाद्वीप में लड़े गये आंदोलनों/युद्धों/संघर्षो की प्रकृति तथा इन आंदोलनों का क्या भविष्य और सीमा रही है, पर की गयी है। साथ ही इन संघर्षो में सफलता प्राप्त करने के बाद सत्ता संभालने और राज्य निर्माण के दौरान निम्न पूंजीपति वर्ग के व्यवहार और क्रियाकलाप पर भी सामान्य टिप्पणी की गयी है। लेख के अंत में जिम्बावे का उदाहरण लेकर बात की गयी है।

निम्न बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में अफ्रीका महाद्वीप क विभिन्न देशों में लड़े गये आंदोलनों की व्यापकता और जटिलता के कारण तथा राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों के असमान विकास के कारण कई उदाहरणों को लेना सम्भव नहीं है। अत: यहां सामान्य टिप्पणी करने के उपरांत एक ही उदाहरण जिम्बावे को लिया गया है।

निम्न पूंजीपति वर्ग और उसकी क्रान्तिकारिता

''निम्न पूंजीपति वर्ग डींगें हांकने में बहुत आगे होता है, लेकिन कार्यकलाप में बहुत अशक्त होता है तथा कोई भी जोखिम उठाने से बहुत दूर भागता है। उसके वाणिज्यिक लेन-देनों तथा साख सम्बंधी कारोबार की तुच्छ प्रकृति उसके पूरे स्वरूप पर अपना प्रभाव छोड़ती है और उसे किसी भी प्रकार की क्रियाशीलता तथा उद्यमशीलता से वंचित करती है: इसलिए यह अपेक्षा की जा सकती थी कि उसका राजनीतिक कार्यकलाप भी इसी तरह का होगा। वास्तव में निम्न पूंजीपति वर्ग ने इस बारे में कि वह क्या करने जा रहा है, बड़ी-बड़ी बातें कर तथा लम्बी डींगें हांककर विद्रोह को प्रोत्साहित किया। विद्रोह के छिड़ते ही, जो वह नहीं चाहता था, वह सत्ता हथियाने के लिए उत्सुक था। उसने सत्ता को और किसी चीज के लिए

नहीं, केवल विद्रोह के प्रभावों को नष्ट करने के लिए इस्तेमाल किया।''(एंगेल्स, 'जर्मनी में क्रांति और प्रतिक्रांति,' पेज-107-108, मार्क्स-एंगेल्स स. रचनाएं तीन खण्डों में, खण्ड-1,भाग-2, प्र.प्रकाशन)

1848 में जर्मन क्रांति के समय निम्न पूंजीपति वर्ग की भूमिका पर की गयी एंगेल्स की यह टिप्पणी निम्न पूंजीपति वर्ग के चरित्र का खुलासा कर देती है।

छोटे दुकानदार, छोटे व्यवसायी, डाक्टर, इन्जीनियर, शिक्षक, विद्यार्थी, मध्यम-छोटे किसानों आदि से निर्मित निम्न पूंजीपति वर्ग की भूमिका क्रांतियों व राष्ट्रीय मुक्तियुद्धों में क्रांतिकारी होने के साथ-साथ सुधारवादी और प्रतिक्रियावादी भी रही है। वास्तव में, उसकी भूमिका अथवा उसका चरित्र इस बात से तय हो रहा होता है कि कौन सी परिस्थिति उसकी छोटी सम्पत्ति या पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच की उसकी मध्यवर्ती स्थिति के लिये अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल होगी। क्रांति या राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों के दौरान उसकी पक्षधरता इस बात से भी तय हो रही होती है कि पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग में से कौन सा पक्ष तात्कालिक तौर पर शक्तिशाली है और किसके पक्ष में होने से उसकी छोटी सम्पत्ति या मध्यवर्ती स्थिति को अधिकतम लाभ होगा।

एंगेल्स ने 'जर्मनी में क्रांति तथा प्रतिक्रांति' नामक पुस्तक में इस वर्ग का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है। एंगेल्स लिखते हैं,

''छोटे-छोटे व्यवसायियों और दुकानदारों का वर्ग जर्मनी में तादाद की दृष्टि से बहुत ही बड़ा है, यह उस देश में बड़े-बड़े पूंजीपतियों तथा उद्योगपतियों के एक वर्ग के रूप में कमजोर विकास का फल है। बड़े-बड़े शहरों के निवासियों में तो उसकी करीब-करीब बहुसंख्या है, छोटे-छोटे शहरों में उसका पूरी तरह बोलबाला है क्योंकि वहां प्रभाव पाने के लिए अधिक समृद्ध प्रतियोगियों का अभाव है। यह वर्ग, जो प्रत्येक आधुनिक राज्य और तमाम आधुनिक क्रांतियों में महत्वपूर्ण होता है, जर्मनी में तो और भी अधिक महत्वपूर्ण है जहां हाल के संघर्षों के दौरान उसने आम तौर पर निर्णायक भूमिका अदा की। बड़े-बड़े पूंजीपतियों, व्यापारियों और उद्योगपतियों, अधिक सटीक शब्दों में, बुर्जुआ तथा सर्वहारा या औद्योगिक वर्ग के बीच उसकी मध्यवर्ती स्थिति उसका स्वरूप निर्धारित करती है। पहले के बीच स्थान पाने की कामना करने वाले इस वर्ग के लोगों के भाग्य में हल्का-सा उल्टा झोंका उन्हें दूसरे की पांतों में पटक देता है।....इस प्रकार अधिक समृद्ध वर्ग की कतारों में प्रवेश पाने की आशा तथा सर्वहाराओं की, यही नहीं, मुफलिस की स्थिति में पहुंच जाने की आशंका के बीच, सार्वजनिक मामलों के संचालन में भाग लेकर अपने स्वार्थों के संवर्द्धन की आशा तथा गलत मौके पर सरकार का, जो उसके अस्तित्व को ही खत्म कर देती है क्योंकि उसके पास उसके सर्वोत्तम ग्राहकों को छीनने की ताकत है, कोपभाजन बनने की आशंका के बीच निरन्तर झूलने वाले इस वर्ग के पास अल्प साधन होते हैं। जिनके स्वामित्व की असुरक्षा का अनुपात उसकी मात्रा से उल्टा होता है। यह वर्ग अपने विचारों में घोर ढुल-मुल होता है। सशक्त सामंती या राजतंत्रवादी सरकार के मातहत वह बहुत नम्र होता है और झुक-झुक कर हुक्मबरदारी करता है, परन्तु जब मध्यम वर्ग ऊपर उठता है वह उदारतावाद की ओर पहुंच जाता है, ज्यों ही मध्यम वर्ग अपनी श्रेष्ठता कायम कर देता है, उसे प्रचंड जनवादी दौरे पड़ने लगते हैं,

लेकिन जब उसके नीचे का वर्ग, सर्वहारा वर्ग अपना स्वतंत्र आंदोलन शुरू करने का यत्न करता है तो वह आशंकित होकर बुरी तरह भयभीत हो जाता है।
(एंगेल्स, पृष्ठ 12-13,वही)

उपरोक्त वर्णन में बड़ी आसानी से 'सामन्ती या राजतंत्रवादी सरकार' के स्थान पर औपनिवेशिक शासन को रखा जा सकता है और निम्न पूंजीपति वर्ग की भूमिका को राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों में उसी तरह से देखा जा सकता है जिस प्रकार एंगेल्स, जर्मनी में, 1848 के दौरान उसकी भूमिका को देख रहे थे। अफ्रीका महाद्वीप में निम्न पूंजीपति वर्ग की राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों में सक्रिय भूमिका रही है। और उसकी भूमिका अपनी वर्गीय सीमाओं का शिकार थी।

मूलतः अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के विभिन्न वर्षो में अफ्रीकी महाद्वीप के विभिन्न देश औपनिवेशिक गुलामी की जकड़न में आते हैं। साम्राज्यवादी देश अपने औपनिवेशिक हितों के लिए इन मुल्कों में कम और ज्यादा पूंजीवादी विकास का अध्यारोपण करते हैं। यद्यपि पुर्तगाल, डच, इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय देश की व्यापारिक कम्पनियां और फौजें पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी से ही अफ्रीकी महाद्वीप के अपेक्षाकृत अन्दरूनी इलाकों में भी पैठ बनाने की कोशिश कर रही थी।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों तथा बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों में ही अफ्रीका के अधिकांश देशों में आधुनिक वर्गो का उदय होता है। अध्यारोपित पूंजीवादी विकास इन वर्गो के उदय के लिये जमीन निर्मित करता है। उत्तरी अफ्रीका के कुछ देशों मिस्र, लीबिया, मोरक्को आदि को छोड़कर शेष अफ्रीका के अधिकांश देश यूरोपीय साम्राज्यवादियों के आने के पहले कुछ अपवादों को छोड़कर सामंतवाद पूर्व की मूलतः कबीलाई प्राकृतिक अर्थव्यवस्था वाली अवस्था में ही जी रहे थे। यद्यपि तमाम देशों में वर्गीय विभाजन की शुरूआत अपनी स्वाभाविक गति से हो रही थी। अभिजन और सामान्य जन का बंटवारा होने लगा था। कबीलाई समाज में वर्गीय विभाजन जन्म लेने लगा था तब भी वर्गीय विभाजन या आधुनिक वर्गो के जन्म व विकास में यूरोपीय उपनिवेशवादियों की गतिविधियों का ही मुख्य योगदान है। सम्राज्यवादी होड़ के उन्नीसवीं व बीसवीं सदी में तीखा होने से अफ्रीकी महाद्वीप का साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच में बंटवारा-पुनर्बंटवारा चलता रहा ।

औपनिवेशिक गुलामी के दौर में साम्राज्यवादियों ने अफ्रीका के प्राकृतिक साधनों का जबरदस्त दोहन किया। साथ ही सोलहवीं शताब्दी से मानव जाति के बीच सबसे घृणित व्यापार गुलामों का व्यापार शुरू हुआ। अठाहरवीं सदी में यह व्यापार अपने शिखर पर पहुंच गया और क्रूरता की सारी हदों को यह व्यापार लांघ गया। मूलतः पश्चिम व दक्षिण अफ्रीका के विभिन्न देश, अमेरिका और यूरोप के लिए इस व्यापार की मंडी बन गये। विभिन्न खनिज सम्पदाओं के दोहन तथा अन्य औपनिवेशिक जरूरतों के चलते रेल तथा अन्य यातायात व संचार के साधनों का विकास हुआ। बाजार के विकास के साथ-साथ सीमित स्तर पर शिक्षा के प्रसार ने निम्न पूंजीपति वर्ग के जन्म और विकास में योगदान दिया। उत्पादन के साधनों पर यूरोपीय साम्राज्यवादियों का कब्जा पूरे औपनिवेशिक युग में रहा है। कई देशों तथा जिम्बावे, दक्षिण अफ्रीका में औपनिवेशिक शासन व रंगभेद की समाप्ति के बाद भी गोरे पूंजीपतियों का ही उद्योग, खान, जमीन, यातायात के साधनों आदि पर कब्जा रहा है। अफ्रीकी बुर्जुआ वर्ग की नाममात्र की उपस्थिति तथा कम प्रभाव के चलते रंगभेद तथा राष्ट्रीय उत्पीड़न के खिलाफ संघर्षो में अफ्रीका के कई देशों में निम्न पूंजीपति वर्ग ही अग्रणी भूमिका में रहा है।

कीनिया, तंजानिया, जाम्बिया, घाना, जिम्बावे, कांगों, बेनिन इत्यादि देशों में औपनिवेशिक गुलामी तथा रंगभेद के खिलाफ जुझारू संघर्षो का नेतृत्व निम्न पूंजीपति वर्ग ने किया। निम्न पूंजीपति वर्ग ने किस्म-किस्म के समाजवाद के नाम के साथ अपने संघर्ष को सामाजिक संघर्ष का नाम दिया तथा शहरी व ग्रामीण मजदूरों को अपने कार्यक्रम के पीछे गोलबंद करने में कामयाब रहा।

रंगभेद और औपनिवेशिक गुलामी के विरूद्ध संघर्ष में निम्न पूंजीपति वर्ग ने कई उग्र नारे और कार्यक्रम दिये। राष्ट्रीयकरण, भूमि का पुनर्वितरण आदि नारों के साथ अधिकांश निम्न पूंजीपति वर्ग के नेताओं ने समाजवाद की बातें की। 'अफ्रीकी समाजवाद' एक बहुप्रचारित तथा लोकप्रिय निम्न पूंजीवादी नारा रहा है। समाजवाद की व्याख्या विभिन्न अफ्रीकी नेताओं जैसे ज्यूलिस न्रेरे, क्वामी न्क्रूमाह इत्यादि अपने ढंग से करते रहे हैं। 'अफ्रीकी समाजवाद' निम्न पूंजीपति वर्ग की विचारधारा है। इस पर आगे टिप्पणी की गयी है।

निम्न पूंजीपति वर्ग जिन भी देशों में सत्ता में आया उसने अपने सारे नारों उग्र राष्ट्रवाद, 'समाजवाद', राष्ट्रीयकरण व भूमि पुनर्वितरण के साथ खिलवाड़ ही किया। अक्सर जुझारू और सशस्त्र संघर्ष समझौतापरस्ती के साथ समाप्त हुये हैं। रंगभेद की औपचारिक समाप्ति तथा निम्न पूंजीपति और बड़े पूंजीपति वर्ग के शासन की स्थापना के बाद इनमें से ज्यादातर आंदोलन ऊर्जाविहीन हो गये। बाद के समय में कई देशों में मजदूरों तथा अन्य मेहनतकशों का इन शासकों के शासन के खिलाफ आक्रोश भी फूट पड़ा। जनवाद, समाजवाद की बातें करने वाले शासकों ने एक दलीय शासन व्यवस्था कायम की तथा जन आंदोलनों को कुचलनें में अपने पूर्व शासकों की तरह ही व्यवहार किया। जाम्बिया, जिम्बावे, कीनिया, तंजानिया जैसे मुल्कों में इन देशों के शासकों ने मजदूर आंदोलन को कुचलने में सभी तरह के दमनात्मक कदम उठाये।समाजवाद, जनवाद, मानवतावाद (जाम्बिया में घोषित सरकारी विचारधारा) आदि की बातें करने के बावजूद सभी निम्न पूंजीपति के प्रतिनिधि निजी सम्पत्ति की व्यवस्था पर विश्वास रखते रहे हैं। निजी सम्पत्ति की व्यवस्था पर विश्वास और जन साधारण की आकांक्षाओं के दबाव ने इन तत्वों के नेतृत्व में चलने वाले आंदोलनों को दोहरेपन का शिकार बनाये रखा है। निम्न पूंजीवादी तत्व राष्ट्रीय आंदोलनों के दौरान बढ़-चढ़कर समाजवाद की बातें करते रहे है परन्तु सत्तारूढ़ होने पर तमाम किस्म की लफ्फाजी के साथ पूंजीवादी कार्यक्रम ही लागू करते रहे हैं। कुछ उग्र-नरम सामाजिक सुधारों के साथ वह एक किस्म का राजकीय पूंजीवाद ही होता था। उत्पादन के मुख्य साधन भूमि का कहीं भी राष्ट्रीयकरण नहीं किया गया। बड़े उद्योगों व यातायात के साधनों को राज्य ने तमाम देशों में अपने नियंत्रण में रखा।

निजी सम्पत्ति की व्यवस्था के प्रति इनकी गहरी प्रतिबद्धता तथा स्वयं अपनी वर्गीय स्थिति के कारण उत्पन्न होने वाले हितों तथा दर्शन के कारण ही अफ्रीका महाद्वीप के राष्ट्रीय नेताओं के विचारों तथा क्रियाकलाप में पूंजीवादी विचारों तथा समाजवादी विचारों का विचित्र घालमेल दिखायी देता है। 'राष्ट्रीय किस्म का समाजवाद' 'अफ्रीकी समाजवाद' 'राज्य के जरिये समाजवाद' 'अफ्रीका की विशिष्ट परिस्थिति वाला समाजवाद' 'पूर्व तथा पश्चिम की विचारधाराओं का अफ्रीका की परिस्थिति के अनुरूप संलयन' 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' आदि किस्म के नारे अथवा जुमलों को अफ्रीका महाद्वीप का निम्न बुर्जुआ तथा बुर्जुआ वर्ग राष्ट्रीय आंदोलनों तथा अपनी सत्ता के निर्माण के दौरान देता रहा है। वास्तव में समाजवाद मात्र कथनी का हिस्सा रहा है जबकि पूंजीवाद या राजकीय पूंजीवाद करनी का मुख्य हिस्सा रहा है। तमाम किस्म के लोकलुभावन कार्यक्रम और नीतियों को कुछ देशों में एक दशक में तो कुछ देशों में दो दशक के भीतर ही तिलांजलि दे दी गयी।

अफ्रीका के तमाम देशों में एक बड़ी परिघटना निम्न पूंजीपति वर्ग के एक हिस्से के पूंजीपति वर्ग में बदलने की रही है। निम्न पूंजीपति वर्ग की जिन पार्टियों के नेतृत्व में रंगभेद तथा राष्ट्रीय मुक्ति के आंदोलन चले, सत्तारूढ़ होते ही उनके नेताओं तथा कार्यकर्ताओं व समर्थकों की वर्गीय स्थिति में परिवर्तन आता गया। राजकीय संस्थानों में नियुक्ति तथा नौकरशाही व सेना के उच्च पद हासिल करने के साथ ये पूंजीपति वर्ग की पांतों में शामिल होते गये। स्थानीय पूंजीपति वर्ग का जन्म व विकास सत्तारूढ़ हुये इस निम्न पूंजीपति वर्ग से हुआ है। राजसत्ता के सुदृढ़ीकरण व पूंजीवादी विकास के दौरान इस वर्ग - पूंजीपति वर्ग - ने क्रमशः अपना आधार बढ़ाया और सत्ता धीरे-धीरे इसके हाथों में आ गयी। वर्गीय स्थिति में परिवर्तन ने निम्न पूंजीवादी नारों के खोखलेपन और पाखण्ड को शीघ्र ही उद्घाटित कर दिया। इसी बात की अभिव्यक्ति इन पार्टियों के मूल कार्यक्रम, नारों तथा प्रस्ताव से पीछे हटने के रूप में भी हुई। जो पार्टियां संघर्षो के दौरान गोरों के अधिकार वाले विशाल फार्मो की जब्ती और वितरण की बात करती थी वे सत्तारूढ़ होने के बाद अपने इस कार्यक्रम से पीछे हट गयी। कई देशों में तो मामूली स्तर का भी भूमि पुनर्वितरण नहीं हुआ। राष्ट्रीयकरण का सर्वाधिक फायदा सत्तारूढ़ हुये वर्ग, नवोदित नौकरशाही तथा पूंजीपति वर्ग ने ही उठाया।

अधिकांश देशों में, शासक वर्ग थोड़े समय में ही तमाम किस्म के सुधारवादी कदमों या दूसरे शब्दों में कल्याणकारी राज्य के कार्यो और वादों से पीछे हटता चला गया। साम्राज्यवाद से कायम किया गया सीमित अलगाव भी कई देशों में एक दशक के भीतर ही टूट गया। आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के दबाव में, साठ से अस्सी के दशक में रंगभेद तथा औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त देशों ने, नब्बे के दशक की शुरूआत होते-होते ढांचागत समायोजन के प्रोग्राम (S A P) को स्वीकार कर लिया। जैसे-जैसे इन देशों के शासकों का विश्व पूंजीवादी व्यवस्था से एकाकार बढ़ता गया वैसे-वैसे इन देशों के शासकों का मजदूरों-किसानों-कर्मचारियों-शिक्षकों और नौजवानों से अलगाव बढ़ता गया। यही कारण रहा है कि अस्सी व नब्बे के दशक में जाम्बिया, जिम्बावे, दक्षिण अफ्रीका, तंजानिया, कीनिया, यहां तक कि नाइजीरिया जैसे देश में भी मजदूरों और अन्य मेहनतकशों ने व्यापक हड़तालें की और कई आन्दोलन लड़े। शासकों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के कारण जातीय तनाव नये सिरे से जन्म लेने लगे हैं यद्यपि तमाम देशों में इसके पीछे साम्राज्यवादी शक्तियां भी सक्रिय रही हैं।

यहां पर यह चर्चा करना अनुचित नहीं होगा कि अफ्रीकी महाद्वीप में चले रंगभेद विरोधी तथा राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्षो में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति, वर्ग शक्तियों के सन्तुलन, साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोध, समाजवाद की उपस्थिति, प्रबल विश्वव्यापी राष्ट्रीय मुक्तिधारा तथा जनता की बढ़ती साम्राज्यवाद विरोधी चेतना की बड़ी भूमिका रही है। साथ ही अफ्रीका में सक्रिय यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों क्रमशः ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, बेल्जियम आदि की गिरती हैसियत और जर्मनी, इटली के द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बेहद कमजोर पड़ जाने ने भी राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों की राह को आसान किया। इन सभी कारकों के सम्मिलित अथवा किन्हीं दो और चार कारकों ने अफ्रीका के अलग-अलग मुल्कों में रंगभेद विरोधी तथा राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्षो को वेग प्रदान किया। साठ व सत्तर के दशक में सोवियत संघ के सामाजिक साम्राज्यवादियों तथा अमेरिकी साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोधों के तीखे होने ने एक तरफ इन संघर्षो में जटिलता प्रदान की वहीं अफ्रीका में नवोदित स्वतंत्रता प्राप्त देशों को इस बात का अवसर प्रदान किया कि वे 'गुट

निरपेक्षता' की नीति के तहत अपनी सत्ता का सुदृढ़ीकरण कर सके। इस संभावना ने तमाम निम्न पूंजीवादी नेताओं को भी इस बात का आधार मुहैया कराया कि वे अपनी वर्गीय सीमाओं को एक या दो दशक के लिए कम कर सके और जनता के बीच में 'समाजवाद' आदि की भ्रम की टाटी खड़ी कर सकें। दोनों ही बड़ी साम्राज्यवादी शक्तियों ने मौका पड़ने पर अफ्रीका के कई देशों में अपने नव औपनिवेशिक शासन को स्थापित करने के प्रयास किये। कई कठपुतली सरकारें उठायी-गिरायी गयीं।

1991 में सोवियत साम्राज्यवादियों के पतन ने अफ्रीका के तमाम मुल्कों के शासकों के सामने नई तरह की कठिनाइयां खड़ी कर दी। अब तक मिलता रहा साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोधों का लाभ समाप्त हो गया। गुट निरपेक्षता की नीति अपनी मौत आप मरने लगी। नब्बे के दशक में एक दिलचस्प घटना अफ्रीका के कई देशों में यह घटी कि वहां एकदलीय शासन प्रणाली के स्थान पर बहुदलीय प्रणाली कायम हुई। सोवियत संघ के पतन के बाद की स्थिति पर एक बड़ी दिलचस्प टिप्पणी युगाण्डा के राष्ट्रपति मूसेवेनी ने की थी। मूसेवेनी ने कहा कि साम्राज्यवादियों के आपसी अंतरविरोध की समाप्ति ने अफ्रीकी महाद्वीप की कई सरकारों को अनाथ कर दिया।

अफ्रीकी महाद्वीप में निम्न पूंजीपति वर्ग के राष्ट्रवाद के उत्थान और पतन को दो प्रमुख घटनाओं से समझा जा सकता है। पहली घटना, अक्टूबर 1952 में केन्या में माऊ माऊ जनविद्रोह है तो दूसरी घटना, अगस्त 1991 की है जिसमें व्यापक जनविरोध के कारण जाम्बिया के एक समय के लब्धप्रतिष्ठ नेता केनेथ कोंडा जो कि 1964 से देश के राष्ट्रपति थे को इस्तीफा देना पड़ा। दोनों ही कुछ मामलों में प्रतिनिधिक घटनायें है। पहली घटना ने एक निम्न मध्य वर्गीय व्यक्ति जोमो केन्याटा को केन्या का पहला राष्ट्रपति बनाया वहीं दूसरी घटना में दो दशक से अधिक समय तक रहे राष्ट्रपति को अपदस्थ कर दिया गया ।

माऊ माऊ एक सशस्त्र राष्ट्रवादी जनविद्रोह था। केन्या में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के खिलाफ यह आंदोलन 1950 में फूट पड़ा। ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने क्रूरतापूर्वक इस आंदोलन का दमन किया। हजारों की संख्या में विद्रोहियों की हत्या की गयी तो हजारों को जेलों में ठूंस दिया गया। किकूयू जनजाति से शुरू हुआ विद्रोह पूरे केन्या में फैल गया। माऊ माऊ विद्रोह के मुख्य नेता जोमो केन्याटा को 1953 में जेल डाल दिया गया और वर्षो जेल में रखा गया। बढ़ते जनदबाव तथा अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण ब्रिटिश उपनिवेशवादियों को पीछे हटना पड़ा और दिसम्बर 1963 को केन्या स्वतंत्र हो गया तथा जोमो केन्याटा जो कि एक समय सरकारी विभाग में क्लर्क रहे थे, राष्ट्रपति बन गये। जनविरोध की लहर पर सवार होकर निम्न पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों और पार्टी के हाथ में सत्ता आ गयी।

केनेथ कोंडा अफ्रीका के कई अन्य जुझारू राष्ट्रवादियों की तरह निम्न मध्यम वर्गीय परिवार से आये थे। वर्षो के जुझारू आंदोलन के जरिये जाम्बिया ने 1964 में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से स्वतंत्रता हासिल की। यूनाइटेड नेशनल इन्डिपेंडेंस पार्टी (U N I P) के नेता के रूप में केनेथ कोंडा जाम्बिया के राष्ट्रपति बने। 1972 में कोंडा ने एक दलीय शासन प्रणाली, जाम्बिया में लागू कर दी। सत्तर व अस्सी के दशक में जाम्बिया के आम जनों की स्थिति बदतर होती गयी। सामाजिक असमानता और बेरोजगारी बढ़ती गयी। 1990 आते-आते जन असंतोष बढ़ता चला गया। अस्सी के दशक में मजदूरों व छात्रों के आंदोलन केनेथ कोंडा की सरकार के खिलाफ बढ़ते चले गये। दिसम्बर 1987 में मजदूरों ने सरकार के खिलाफ विशाल प्रदर्शन किये। इन प्रदर्शनों में पुलिस के

साथ झड़पों में कई मजदूर मारे गये। 1988 में शिक्षकों, नर्सो, डाक्टरों ने व्यापक हड़तालें की। 1990 में खाद्यान्नों के दामों में तीव्र वृद्धि के खिलाफ दंगे भड़क उठे। बिगड़ती हालात देखकर कोंडा ने बहुदलीय व्यवस्था के तहत चुनाव आयोजित किये। इन चुनावों में हार के साथ केनेथ कोंडा का तानाशाही से भरा हुआ शासन समाप्त हो गया। नये राष्ट्रपति का भी मजदूरों, कर्मचारियों, विद्यार्थियों ने हड़ताल और आन्दोलनों से स्वागत किया।

जाम्बिया की तरह ही सेनेगल, इरेटेरिया, कोस्ट डी आइवरी, केन्या, कांगो आदि मुल्कों में 1990-91 के दौरान घटनायें घटी। इन देशों में स्थापित शासक मजदूरों, कर्मचारियों, डाक्टरों, बुद्धिजीवियों आदि के आंदोलन के कारण शासन छोड़ने को मजबूर हुए। इसके अतिरिक्त स्वयं शासक वर्ग के भीतर भी एकदलीय शासन प्रणाली को लेकर मतभेद खड़े हो गये थे। सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप की घटनाओं ने एकदलीय शासन प्रणाली के बिखरने की प्रक्रिया को त्वरित कर दिया। जाम्बिया, जिम्बाबे, तंजानिया जैसे सभी मुल्कों में एकदलीय प्रणाली के स्थान पर बहुदलीय प्रणाली लागू हुई।

कुछ शब्द, अफ्रीका के कई देशों में बहुदलीय से एक दलीय तथा एक दलीय से बहुदलीय शासन प्रणाली पर। जाम्बिया, जिम्बावे जैसे कई देशों में औपनिवेशिक गुलामी और रंगभेद की समाप्ति के बाद बहुदलीय शासन प्रणाली कायम हुई थी। कुछ वर्षो में प्रमुख सत्तारूढ़ दलों ने इन देशों में एकदलीय शासन प्रणाली लागू कर दी। नब्बे के दशक में इन सभी देशों में पुनः बहुदलीय प्रणाली लागू हुई।

आजाद होते वक्त इन देशों में पूंजीपति वर्ग नाममात्र का था। निम्न पूंजीपति वर्ग की विभिन्न पार्टियां और संगठन थे। इसमें इन देशों की जातीय संरचना भी एक प्रमुख कारण थी। अलग-अलग निम्न पूंजीपति वर्ग की पार्टियों का अलग-अलग जन जातीय समूह पर कम और ज्यादा प्रभाव था। आजादी के बाद पूंजीपति वर्ग का जन्म और विकास इन्हीं विभिन्न निम्न पूंजीवादी समूहों से हुआ था। कुछ समय तक इन समूहों में अपने जातीय आधार के साथ सत्ता के लिये प्रतिद्वन्द्विता चली है।इस पूंजीपति वर्ग के गठन व विस्तार में इन जातीय समूहों के ऊपरी तबके के सम्मिलन तथा आत्मसातीकरण की प्रक्रिया ने भूमिका निभायी। तंजानिया, जिम्बावे, जाम्बियां में ये विभिन्न गुट सत्तारूढ़ पार्टी के हिस्से बन गये। विरोधी गुट समाप्त हो गये और एक दलीय शासन की स्थापना हो गयी। शुरूआती वर्षो में दिखायी देने वाली प्रतिद्वन्द्विता एक कालखण्ड के लिए पृष्ठ भूमि में चली गयी। नवोदित पूंजीपति वर्ग ने एक दलीय शासन प्रणाली के जरिये वैश्विक परिस्थिति के अनुरूप अपने वर्ग के हितों को साधना शुरू किया। एकदलीय शासन प्रणाली ने इन देशों के पूंजीवादी विकास तथा विऔपनिवेशीकरण के लिए अपेक्षाकृत राजनीतिक स्थिरता प्रदान की।

नब्बे के दशक में एक दलीय शासन प्रणाली इन सभी देशों में समाप्त हो गयी। जैसा कि हम ऊपर कह आये है कि सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप की घटनाओं के प्रभाव के साथ सबसे बड़ी बात यह थी कि ये सभी समाज गम्भीर किस्म के आंतरिक संकट के शिकार हो गये थे। पूंजीवादी विकास के रास्ते के कारण समाज के बुनियादी वर्गो की स्थिति बदतर होती गयी और उनका असंतोष मुखर होता गया। शासक वर्ग के भीतर भी मतभेद इस संकट के कारण उभर आये। छुपी हुई प्रतिद्वन्द्विता खुलकर सामने आने लगी। ज्यूलिस न्रेरे, केनेथ कोंडा, राबर्ट मुगाबे जैसे नेता जिनके नेतृत्व में राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध और रंगभेद की समाप्ति का संघर्ष लड़ा गया था, अपना आभा मण्डल खोने लगे। इस संघर्ष के दौरान पूरा राष्ट्र इन नेताओं तथा इनकी पार्टियों के पीछे ही मुख्यत:

लामबंद हुआ था। जनता के बीच इनकी लोकप्रियता तथा नवोदित पूंजीपति वर्ग के हित इनको वो स्थान प्रदान कर देते थे जहां वे शासन के एक मात्र प्रतीक बनकर उभरे थे। और उनको पूरे देश में तमाम किस्म की नीतियां, कार्यक्रम आदि के निर्माण तथा आंतरिक संघर्षो के दौरान, एक समय में, एकमात्र प्राधिकार (authority) समझा जाता था। बाद के समय में, विशेषकर नब्बे के दशक में, इनके नारों, नीतियों का पूरी तरह से खुलासा होने लगा। आभामण्डल से च्युत हुये इन नेताओं की प्राधिकार वाली स्थिति समाप्त हो गयी। पूंजीपति वर्ग के लिये अब इनकी उपयोगिता समाप्त हो गयी थी। जनता के बीच इनके शासन की वैधता खत्म हो गयी। उपरोक्त कारकों ने सम्मिलित रूप से एकदलीय शासन प्रणाली के खत्म होने में भूमिका निभायी।

कुछ महत्वपूर्ण सवालों पर निम्न पूंजीवादी विचार

राज्य या राजसत्ता का सवाल: अफ्रीका के तमाम राष्ट्रीय मुक्ति तथा रंगभेद विरोधी संघर्ष के नेता राज्य (state) या राजसत्ता (state power) के सवाल पर बहुत घालमेल करते हैं। इस बात की अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है। पहली अभिव्यक्ति उस दौरान होती है जब विभिन्न मुल्कों में राष्ट्रीय मुक्ति तथा रंगभेद-विरोधी संघर्ष चल रहे थे। उस समय दिये गये भाषणों, कार्यक्रमों तथा घोषणापत्रों में अफ्रीका के तमाम राष्ट्रवादी नेता जो कि निम्न पूंजीपति वर्ग से आये होते है राज्य को ऐसे प्रस्तुत कर रहे होते है मानो वह किसी एक वर्ग का ना होकर सभी वर्गो का होगा। वह अक्सर भावी राज्य का ऐसा चित्र खींचते रहे हैं जिसमें समाज के सभी वर्गो के हितों का ख्याल रखा जायेगा और राज्य समाज की सभी समस्याओं का समाधान कर देगा।

इसी बात की दूसरी अभिव्यक्ति निम्न पूंजीपति वर्ग द्वारा सत्ता हासिल करने के बाद भी होती है। जिम्बावे, जाम्बिया, तंजानिया, घाना जैसे कई मुल्कों में इस वर्ग ने सत्ता हासिल करने के बाद (कुछ में कई वर्षो तो कुछ में कई दशक तक) इस बात का स्वांग किया कि उनके नेतृत्व में कायम शासन संसार के अन्य पूंजीवादी शासनों से भिन्न है कि उनकी सत्ता या उनके द्वारा कायम राज्य उनके देश की सम्पूर्ण जनता के हितों और आकांक्षाओं को व्यक्त करता है। इनमें थोड़ी स्थिति उनकी भिन्न थी जो स्वयं को मार्क्सवाद या वैज्ञानिक समाजवाद से प्रेरित-प्रभावित (या उसके अनुयायी) बताते रहे थे। ऐसे नेताओं और पार्टियों के वक्तव्य सामान्य मार्क्सवादी शब्दावली से सजे होते थे। साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के खिलाफ सर्वहारा दृष्टिकोण से कुछ आलोचना उठा ली गयी होती थी लेकिन इस सबके भीतर निम्न पूंजीपति/पूंजीपति वर्ग के हित और दृष्टिकोण छुपे होते थे। यहां मजेदार बात यह भी थी कि इस तरह के नेताओं और पार्टियों ने अपने वर्ग की पार्टी व राज्य का ढांचा कम्युनिस्ट पार्टी और समाजवादी राज्य से ले लिया होता था। रूप सर्वहारा की पार्टी और राज्य का, अन्तर्वस्तु पेटी-बुर्जुआ या बुर्जुआ की। वैसे अपने सारे किन्तु-परन्तु, वाम लफ्फाजी के साथ निम्न बुर्जुआ विचारधारा भी सारतः बुर्जुआ विचारधारा ही होती है।

पहली अभिव्यक्ति और दूसरी अभिव्यक्ति में इस बात के फर्क कि पहले में सत्ता प्राप्त कर ली गयी होती थी के अलावा यह भी था कि जहां पहले में यह उग्र सुधार या क्रांतिकारिता के नारों के साथ आती थी वहीं दूसरे में यह आश्वासन, व्यवहारिकता, परिस्थितियों की दुहाई के साथ आती थी।

राज्य के सवाल पर निम्न पूंजीपति वर्ग की विचारधारा गैर वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शिकार होती है। अफ्रीका के निम्न पूंजीपति/पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों के साथ भी ऐसा होता है। समाज

विकास में उत्पादन शक्तियों तथा वर्गीय संघर्ष की भूमिका के स्थान पर वे राज्य या राजसत्ता को ऐसे प्रस्तुत करते थे मानो उसके जरिये समाज विकास की एक मंजिल से दूसरी मंजिल में छलांग लगायी जा सकती है। जब राज्य को ऐसी भूमिका प्रदान कर दी जाती है तो समाज के बुनियादी वर्गों–मजदूरों और किसानों या शोषित–उत्पीड़ित तबकों की लामबंदी और उनकी पहलकदमी का सवाल गौण हो जाता है। यहां दुश्मन या तो समाप्त हो चुके होते हैं या अस्पष्ट हो जाते हैं। राज्य किसी एक वर्ग का दूसरे वर्ग के उत्पीड़न का यंत्र होने के स्थान पर एक ऐसा यंत्र बना दिया जाता है जो उत्पीड़न को दूर करने के लिए निर्मित किया गया हो। किसी एक वर्ग की सेवा करने के स्थान पर उसे ऐसे प्रस्तुत किया जाता है मानो राज्य समाज के सभी वर्गों की सेवा कर रहा हो या करेगा।

एक बार राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की समाप्ति और सत्ता कायम हो जाने के बाद जनता की भूमिका समाप्तप्राय: समझी जाती है या बना दी जाती है या वही तक उसको रोकने का प्रयास किया जाता है। वास्तव में, इसमें ही निम्न पूंजीपति और पूंजीपति वर्ग का हित छुपा होता है कि जनता इस मुकाम पर आकर रूक जाये, अपनी संघर्षशीलता और क्रांतिकारिता को त्याग दे। धैर्यपूर्वक ढंग से चुपचाप नवोदित शासक वर्ग या सत्ता से अपने उद्धार की प्रतीक्षा और इच्छा करे।अफ्रीका के तमाम मुल्कों में ऐसा हुआ भी है।

तंजानिया, जाम्बिया, जिम्बावे, दक्षिण अफ्रीका आदि मुल्कों में जनता ने एक समय तक प्रतीक्षा की भी है। सच बात तो यह है कि नवोदित शासक वर्ग के चरित्र व नीतियों के खुलासे में वक्त भी लगा है। कहीं एक दशक तो कहीं उससे भी कम समय में जनता को अपने नवोदित शासकों के खिलाफ अपनी बुनियादी जरूरतों रोटी, पानी, बिजली, रोजगार के लिए सड़कों पर उतरना पड़ा है।

नवोदित शासक वर्ग को अपनी सत्ता के सुदृढ़ीकरण के लिए भी वक्त चाहिए था यही कारण है कि सत्ता हासिल करने के बाद ज्यूलिस न्रेरे, केन्याटा, केनेथ कोंडा, राबर्ट मुगाबे आदि सभी नेता कुछ सामाजिक सुधार, कुछ सामाजिक सेवाओं का विकास, जैसे कार्य करते रहे हैं। जनता को शान्त करने के अलावा अपने भावी सत्ता या शासन के लिए भी यह जरूरी था। नवोदित शासक वर्ग को अपने वर्ग के विकास तथा विस्तार के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि समाज का पूंजीवादी विकास हो। पूंजीपति वर्ग को अपनी व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए भी इस बात की आवश्यकता थी कि समाज में सामान्य व तकनीकी शिक्षा का प्रचार–प्रसार हो। सामान्य तौर पर सभी नव स्वतंत्रता प्राप्त देशों ने अलग–अलग लेबलों के साथ राजकीय पूंजीवाद के मॉडल को अपनाया। राजकीय पूंजीवाद के जरिये जनता के बीच इन देशों के शासक समाजवाद या समाजवाद की ओर प्रस्थान का भ्रम भी आसानी से खड़ा कर सके हैं। तंजानिया इसका एक उदाहरण है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्त होने के बाद तंजानिया में सत्तारूढ़ होने वाली पार्टी तंजानियका अफ्रीकन नेशनल यूनियन (T A N U) तानू अपने नेता ज्यूलिस न्रेरे के नेतृत्व में 1967 में 'अरूसा घोषणा' (Arusha Declaration) के द्वारा तंजानिया को समाजवादी राज्य बनाने की बात करती है। अपनी पार्टी को किसानों और मजदूरों की पार्टी घोषित करती है तथा बढ़–चढ़ कर जनवाद और समाजवाद के जरिये अपने नागरिकों को तमाम अधिकार देने की बातें करती है। लेकिन वास्तविकता में राज्य की जरूरतों के हिसाब से न केवल कड़े फैसले लेती है बल्कि औपनिवेशिक जमाने के

काले कानूनों को ज्यों का त्यों बनाये रखती है और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की तरह मेहनतकशों के संगठनों पर प्रतिबंध लगाती है।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने 1954 के एक कानून के जरिये गवर्नर को इस बात के असीमित अधिकार दे दिये थे कि वह ऐसी किसी भी संस्था को गैर कानूनी घोषित कर सकता है जिसके बारे में गवर्नर को यह आशंका हो कि वह किसी भी तरह से शांति, कानून और 'अच्छे शासन' के लिए खतरा है। 1957 में अपनी इन शक्तियों के द्वारा ब्रिटिश गवर्नर ने तानू की कई स्थानीय इकाइयों पर प्रतिबंध लगा दिया था। ज्यूलिस न्रेरे ने सत्ता सम्भालने के बाद न केवल इस कानून को बनाये रखा बल्कि इसी कानून के तहत किसानों के एक स्वायत्त संगठन रूवूमा डेवलपमेंट एसोसिएसन (The Revuma Development Association) पर प्रतिबंध लगा दिया। कथनी में समाजवाद की बातें तथा सत्ता चलाने के लिये औपनिवेशिक कानूनों को बनाये रखने का दोहरापन निम्न पूंजीपति वर्ग की कार्यप्रणाली का एक प्रमुख हिस्सा रहा है।

साम्राज्यवाद का सवाल: अफ्रीका महाद्वीप के तमाम राष्ट्रवादी नेताओं का साम्राज्यवाद के सवाल पर दृष्टिकोण बेहद सीमित और एकांगी रहा है। अक्सर साम्राज्यवाद के एक चरण या रूप को साम्राज्यवाद बताकर संघर्ष विकसित किया गया। उस चरण या रूप में परिवर्तन को या तो नोटिस में नहीं लिया गया या फिर उसके शोषणकारी-उत्पीड़नकारी चरित्र पर पर्दा डालकर कई किस्म के भ्रम फैलाये जाते रहे हैं। जहां पहले रूप उसके अस्तित्व के लिए अत्यधिक हानिकारक थे और बाद के रूप अपेक्षाकृत कम हानिकारक थे।

अक्सर ही उपनिवेशवाद के चरण की समाप्ति को साम्राज्यवाद के अंत के रूप में दिखाने की प्रवृत्ति रही है। नवोदित देशों के शासकों ने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता को इस रूप में पेश किया है मानो साम्राज्यवादी देशों और उनकी प्रभुत्व की आकांक्षा लुप्त हो गयी हो। जिस शब्दावली का चलन प्रचलन में है, वह है, विकसित और विकासशील देश या उत्तरी गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्ध के देश। यह शब्दावली साम्राज्यवाद के चरित्र पर पर्दा डालती है। और स्वयं इन देशों के शासकों के साम्राज्यवाद से असमान और दवाब के रिश्तों को सुनहरे वाक्‌जाल में छिपा दिया जाता है। अक्सर साम्राज्यवादी देशों में शासक वर्ग और शासित वर्ग के भेद को भुला दिया जाता है और इसी तरह अपने देशों में भी शासक वर्ग और शासित वर्ग के स्थान पर वे अपने आप को ऐसे प्रस्तुत करते हैं मानो वे परजीवी वर्ग न हों और ये अपने देश में शोषण-उत्पीड़न न करते हों। साम्राज्यवाद के साथ तीसरी दुनिया के शासकों का अन्तरविरोध होने के बावजूद आज वे साम्राज्यवाद के खिलाफ जनता का वैसा ही आह्वान नहीं कर सकते हैं जैसा कि वे औपनिवेशिक शासन के खिलाफ कर रहे थे। ऐसा करने पर वे अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारेंगे। विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के साथ एकीकृत रिश्तों में वे सिर्फ अपने लिये बेहतर स्थिति हासिल करने के लिये तथा जनता को भ्रम में डालने के लिये कुछ नकली, कुछ कमजोर साम्राज्यवाद विरोधी भंगिमाएं यदा-कदा ग्रहण कर सकते हैं। जिम्बावे के राष्ट्रपति राबर्ट मुगाबे का हाल के वर्षो में किया गया व्यवहार इसी कोटि में आता है।

इसी तरह 'अरूसा घोषणा' जो कि ज्यूलिस न्रेरे द्वारा लिखित और तानू का अधिकृत दस्तावेज है उसमें साम्राज्यवाद के सवाल पर कुछ भी नहीं कहा गया है। यह दस्तावेज समाजवाद, आत्मनिर्भरता, वाह्य सहायता आदि विषयों को तो उठाया गया है परन्तु एक भी अक्षर इसमें इस

विषय पर नहीं लिखा गया है कि साम्राज्यवाद के साथ नवस्वतंत्रता प्राप्त तंजानिया के क्या रिश्ते बनते हैं? साम्राज्यवाद के युग में एक नवोदित देश में समाजवाद, आत्मनिर्भरता आदि का वास्तविक रास्ता क्या बनता है? साम्राज्यवाद की स्थिति क्या है और उसकी कार्य प्रणाली क्या है? इस घोषणा को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि तंजानिया के लिए साम्राज्यवाद का कोई अस्तित्व ही नहीं है। साम्राज्यवाद की प्रभुत्व की इच्छा, प्रयास और हस्तक्षेप कुछ भी नहीं है। इसी तरह की स्थिति ज्यूलिस न्रेरे के अन्य लेखन में भी दिखायी देती है।

अफ्रीका के तमाम देशों की सरकारों पर साम्राज्यवादी देशों और उनकी संस्थाओं का पूरे नब्बे के दशक में इस बात के लिए दबाव रहा है कि वे 'अच्छा शासन' (Good Governance) करे। इसका सीधा अर्थ है सामाजिक सेवाओं से सरकार हाथ पीछे खींचे, बजट घाटे ना दिखाये और विश्व व्यापार संगठन की नीतियों को लागू करे। इसी सवाल पर 13 अक्टूबर 1998 को ज्यूलिस न्रेरे ने एक लेख 'Good Governance for Africa' लिखा। इस लेख में साम्राज्यवादी तर्क प्रणाली को ही अपनाया गया है और मजेदार बात यह है कि ज्यूलिस न्रेरे कहीं भी इसमें साम्राज्यवादी व्यवस्था की कोई आलोचना नहीं करते हैं।

साम्राज्यवाद के खिलाफ अफ्रीकी नेताओं में क्वामी न्क्रूमाह सबसे अधिक रेडीकल बातें करते रहे हैं। 1965 में क्वामी न्क्रूमाह ने साम्राज्यवाद की नयी पद्धति का खुलासा करते हुए एक किताब लिखी थी। किताब का शीर्षक था ''नव उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद की अंतिम अवस्था'' (Neo-Colonialism,The Last Stage Of Imperialism) था। यह माना जाता है इस पुस्तक के लेखन में चे ग्वेरा ने न्क्रूमाह की मदद की थी। इस पुस्तक के परिचय में, क्वामी न्क्रूमाह ने 'नव उपनिवेशवाद' के बारे में लिखा है,

> ''नव-उपनिवेशवाद का सार यह है कि जो देश इसका लक्ष्य होता है, वह सिद्धान्त के बतौर आजाद होता है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्प्रभुता के लिए सारे वाह्य सूत्र कायम होते हैं। पर वास्तव में इसकी अर्थव्यवस्था और इस वजह से उसकी राजनीतिक नीतियां बाहर से तय हो रही होती है। (Introduction,'Neo-colonialism,The Last Stage of Imperialism', Kwame Nkrumah,1965, अनुवाद हमारा)

इस पुस्तक में न्क्रूमाह नव उपनिवेशवाद की कार्यपद्धति तथा उसके शिकार देशों का विस्तार से वर्णन करते हैं। उसके सैनिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आक्रमण की चर्चा करते हैं। जहां तक नव-उपनिवेशवाद के खुलासे का प्रश्न है वहां तक न्क्रूमाह इसका यथार्थ चित्रण करते हैं। न्क्रूमाह,ज्यूलिस न्रेरे या अन्य अफ्रीकी नेताओं से आगे जाते हैं। वे उपनिवेशवाद के चरण की समाप्ति के बाद नव-उपनिवेशवाद को चिह्नित करते हैं। लेकिन न्क्रूमाह इस सब के बावजूद साम्राज्यवाद की एक निम्न बुर्जुआ आलोचना करते हैं और उसी दृष्टिकोण से ही 'नव-उपनिवेशवाद' के खिलाफ संघर्ष का रास्ता सुझाते हैं।

पहले तो नव उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद का एक चरण है, एक रूप है। यह अपने आप में साम्राज्यवाद की अंतिम अवस्था नहीं बनता है।'नव-उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद की अंतिम अवस्था' की बात एक तो सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से गलत है और दूसरा, इस किताब को लिखे जाने के बाद के इतिहास ने भी न्क्रूमाह की आलोचना और समाधान की सीमाएं उजागर कर दीं।

उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद, आर्थिक नव-उपनिवेशवाद इन एक के बाद एक चरण के रूप में साम्राज्यवाद दुनिया में कायम हैं। साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था है जैसा कि लेनिन ने बताया है। साम्राज्यवादी व्यवस्था का अंत मजदूर वर्ग के नेतृत्व में होने वाली वैश्विक समाजवादी क्रान्ति ही कर सकती है।

बीसवीं सदी में इतिहास को गति प्रदान करने में समाजवादी धारा तथा राष्ट्रीय मुक्ति धारा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। समाजवादी धारा ने जहां साम्राज्यवाद को सीधे तौर पर चुनौती दी वहीं राष्ट्रीय मुक्ति धारा ने साम्राज्यवाद के पिछवाड़े को कमजोर किया दोनों ही धाराओं ने एक-दूसरे को बल प्रदान किया। समाजवाद की उपस्थिति सभी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षो के लिए प्रेरणा का स्रोत थी तथा समाजवाद ने इन सभी संघर्षो में बढ़-चढ़ कर सहयोग व समर्थन दिया। राष्ट्र निर्माण में समाजवाद ने हर तरह से मदद मुहैया करायी।

साठ के दशक में अफ्रीका के कई देश औपनिवेशिक शासन से मुक्त हो गये। एशिया व अफ्रीका में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद चले राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्षो के सिलसिले को साठ के दशक ने त्वरित किया। अस्सी व नब्बे के दशक में जिम्बावे और दक्षिण अफ्रीका की मुक्ति के साथ औपनिवेशिक तथा रंगभेद के आखिरी किले भी ध्वस्त हो गये।

बीसवीं सदी का अंत आते-आते स्थिति यह बन गयी है कि राष्ट्रीय मुक्ति की धारा समाजवादी धारा में समाहित हो गयी है। साम्राज्यवाद के औपनिवेशिक चरण पूर्णतः तथा नव-औपनिवेशिक चरण कमोवेश अपने खात्मे की ओर है। साम्राज्यवाद आर्थिक नव-औपनिवेशिक चरण में प्रवेश कर चुका है। बीसवीं सदी का इतिहस इस बात को साबित करता है कि आज साम्राज्यवाद का तीसरी दुनिया में सामाजिक आधार मुख्यतः पूंजीपति वर्ग बन गया है। इसलिए अपने-अपने राष्ट्रों में पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध लक्षित सर्वहारा क्रांति राष्ट्रीय मुक्ति के शेष कार्यभारों को पूरा करेगी। सर्वहारा वर्ग ही आज साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष में मुख्य लड़ाकू शक्ति है, उसमें इस बात की संभावना है कि वो साम्राज्यवाद की कब्र खोद सके। तीसरी दुनिया के पूंजीपति वर्ग की प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो चुकी है।

बीसवीं सदी का अंत आते-आते तो पूरे तौर पर परन्तु न्क्रूमाह के समय में भी तीसरी दुनिया के शासक ऐसी स्थिति में नहीं थे साम्राज्यवाद के समक्ष कोई गम्भीर चुनौती पेश कर सकें। न्क्रूमाह साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच जारी प्रतिद्वन्द्विता में 'गुट निरपेक्षता' 'अफ्रीकी देशों की एकता' आदि को नव उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष में एक कारगर हथियार के रूप में देखते है। तय बात है यहां न्क्रूमाह तीसरी दुनिया और अफ्रीका के देशों में शासक और शासित, पूंजीपति और सर्वहारा वर्ग के बीच के दुश्मनाना अंतरविरोध और उनके विपरीत वर्गीय हितों को नहीं देखते हैं। इसलिए वे वर्गीय अन्तर्वस्तु को भुलाकर अपना सारा समाधान पेश करते है।

न्क्रूमाह की थीसिस है कि नव औपनिवेशिक नीति के तहत साम्राज्यवादी छोटे-छोटे देशों के पक्षधर हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बड़े स्तर की लड़ाई के स्थान पर सीमित युद्ध (limited war) ही लड़े जा सकते हैं। बड़े स्तर के युद्धों को रोकने में नाभिकीय हथियारों की भी भूमिका है। इसलिए वे आह्वान करते हैं कि बड़े राज्य कायम किये जाने चाहिये और संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह अफ्रीकी महाद्वीप के देशों को एक राज्य के रूप में संगठित हो जाना चाहिए। इस तरह से वे नव उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए बड़े-बड़े राज्यों के गठन का प्रस्ताव रखते है। विशाल

शक्तियों का गठन होते ही न्क्रूमाह के अनुसार नव उपनिवेशवाद का अंत करीब आ जायेगा। तय बात है यहां साम्राज्यवाद के युग में उत्पादन शक्तियों के अन्तर, वित्तीय पूंजी की ताकत, आदि को भुला दिया गया है। इसी तरह साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तरनिहित संकट और साम्राज्यवादी व तीसरी दुनिया के सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी भूमिका को नजरअंदाज कर दिया गया है। न्क्रूमाह की सारी आलोचना, नव उपनिवेशवाद की थीसिस और समाधान तीसरी दुनिया के नवोदित शासक वर्ग का दृष्टिकोण है। नवोदित वर्ग लगभग उसी तरह से एकता का आह्वान करता है जिस तरह एक जमाने में जन्म लेते विशाल ट्रस्टों के खिलाफ छोटे व्यवसायी, छोटे दुकानदार अपनी आपसी एकता का आह्वान कर रहे थे।

समाजवाद का सवाल : अफ्रीकी महाद्वीप के तमाम देश अपनी नव प्राप्त स्वतंत्रता तथा उससे पूर्व रंगभेद तथा राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के समय 'समाजवादी राज्य' के गठन का लक्ष्य रखते रहे हैं। नानारूपी इस समाजवाद की भिन्न-भिन्न व्याख्यायें हैं। क्वामी न्क्रूमाह का समाजवाद ज्यूलिस न्रेरे से भिन्न है। नेल्सन मण्डेला का समाजवाद राबर्ट मुगाबे से भिन्न है। इन सभी समाजवादों का वैज्ञानिक समाजवाद या सर्वहारा की तानाशाही वाले समाजवादी व्यवस्था जो कि पूंजीवाद से साम्यवाद के मध्य एक संक्रमणकालीन व्यवस्था है, से कोई लेना-देना नहीं है। अधिकांश के लिए समाजवाद और साम्यवाद में कोई फर्क नहीं है।

क्वामी न्क्रूमाह, जो कि अफ्रीका के राष्ट्रवादी नेताओं में सबसे अधिक रेडीकल बातें कहते है, वे भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद से पूंजीवाद व साम्राज्यवाद की सामान्य आलोचना तो उठा लेते है परन्तु उसके मूल तत्वों को छोड़ देते हैं। जैसे क्वामी न्क्रूमाह सर्वहारा वर्ग की भूमिका को अपने पूरे विश्लेषण और दर्शन में सामान्य तौर पर कोई स्थान नहीं देते हैं। समाजवाद मूलतः सर्वहारा की तानाशाही का युग है, यह उनके समाजवाद का अर्थ नहीं है। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में ही पूंजीवाद और साम्राज्यवाद का खात्मा हो सकता है, यह समाज में समाजवाद की लड़ाई को संगठित करने में उनकी रणनीति का हिस्सा नहीं है। वर्ग विहीन-शोषण विहीन समाज की स्थापना सर्वहारा के दर्शन और उसके द्वारा ही हो सकती है। ये उनकी सोच का हिस्सा नहीं है। इन सबके अभाव के कारण क्वामी न्क्रूमाह या अन्य अफ्रीकी समाजवादियों का दर्शन भी निम्न पूंजीपति वर्ग/पूंजीपति वर्ग का दर्शन बनकर रह जाता है। और ले-देकर यह उसी वर्ग की सेवा करता है।

क्वामी न्क्रूमाह के दर्शन की सीमाएं वास्तव में उनके वर्ग की सीमाएं है। वे मार्क्सवाद-लेनिनवाद से उतना ही लेते है जितना कि उनके वर्ग को तात्कालिक तौर पर जरूरत है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद से पूंजीवाद-साम्राज्यवाद की सामान्य आलोचना का उतना ही हिस्सा लेते है जितने से वे समाज के अन्य वर्गों को अपने साथ ले सके। सर्वहारा वर्ग को अपने वर्गीय हितों के पीछे पूरे राष्ट्र या समाज के हित कह कर लामबंद कर सकें।

क्वामी न्क्रूमाह की यह पूरी सोच उनके द्वारा 1967 में लिखे गये एक दस्तावेज 'African Socialism Revisited' में परिलक्षित होती है।

> "समाजवाद स्वतः स्फूर्तः (spontaneous) नहीं होता है। यह अपने आप से उत्पन्न नहीं होता। इसके निश्चित (abiding) सिद्धान्त होते हैं जिसके अनुसार कि उत्पादन और वितरण के प्रमुख साधनों का समाजीकरण (Socialised) किया जा चुका हो थोड़े से लोगों द्वारा बहुतों का शोषण रोका जा चुका हो, कि ऐसा कहा जा

सकता हो, अर्थव्यवस्था समतावाद (egalitarianism) से संरक्षित है। अफ्रीका में विभिन्न समाजवादी देश नीतियों के व्याख्या के इस या उस ढ़ंग के कारण भिन्न हो सकते है लेकिन ये भिन्नताएं मनमानी या रुचि-अरुचि (vagaries of taste) के अनुसार नहीं हो सकती हैं। वे वैज्ञानिक रूप से परिभाषित होनी चाहिये, वे भिन्न-भिन्न देशों की विशिष्ट परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुरूप होनी चाहिये।'' (Kwame Nkrumah, 'African Socialism Revisited' 1967, अनुवाद हमारा, स्रोत-इण्टरनेट)

इस पूरे लेख में वर्गीय विश्लेषण गायब है। यद्यपि न्क्रूमाह मार्क्स, एंगेल्स, और लेनिन के हवाले देते हैं। यहां तक कि द्वितीय इण्टरनेशनल के पतन का उदाहरण देकर वे सामाजिक-जनवादी पार्टी और लेनिन की पार्टी का फर्क भी दिखाते हैं। और इसी बहाने अपने द्वारा प्रस्तुत 'वैज्ञानिक समाजवाद' और 'अफ्रीकी समाजवाद' का फर्क भी समझाते हैं। यह और कुछ नहीं दो निम्न बुर्जुआ विचारधाराओं का फर्क है। क्योंकि वर्गीय अन्तर्वस्तु गायब किये जाने के बाद सर्वहारा वर्ग की विचारधारा एक हानिरहित विचारधारा में तबदील हो जायेगी और उसे आसानी से तीसरी दुनिया का नवोदित शासक वर्ग अपना सकता था, और क्वामी न्क्रूमाह ऐसा ही करते हैं।

क्वामी न्क्रूमाह की तरह ही ज्यूलिस न्रेरे भी समाजवाद की जो धारणा प्रस्तुत करते हैं वो भी उसी तरह से वर्गीय अन्तर्वस्तु से रहित है। समाजवाद की स्थापना सर्वहारा वर्ग का कार्य न होकर, नवस्थापित राज्य का कार्य है। नवोदित राज्य, तंजानिया के सभी वर्गो का प्रतिनिधि है। राज्य का कार्य है कि वो तंजानिया से पूंजीवाद और सामंतवाद का खात्मा करके 'सच्चे अर्थो' में समाजवाद लाये। यहां राज्य वर्गोपरि भूमिका ग्रहण कर लेता है। मजदूरों और किसानों की क्रांतिकारी भूमिका को राज्य को सौंप दिया जाता है।

1967 में 'अरूसा घोषणा' (The Arusha Declaration) के द्वारा ज्यूलिस न्रेरे ने अपनी पार्टी, तंजानिया अफ्रीकन नेशनल यूनियन (तानू), का लक्ष्य तंजानिया में समाजवादी राज्य की स्थापना बताया। ज्यूलिस न्रेरे के समाजवाद की धारणा की विसंगतियों को उजागर करने के लिये हम उसके कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं। अरूसा घोषणा कहती है,

''तानू की नीति समाजवादी राज्य के निर्माण की है।......

''यह राज्य की जिम्मेदारी है कि वह राष्ट्र के आर्थिक जीवन में इस तरह से सक्रिय हस्तक्षेप करे कि सभी नागरिकों की समृद्धि की गारण्टी की जा सके और एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति या एक समूह द्वारा दूसरे समूह का शोषण रोका जा सके और सम्पत्ति के संचय को उस हालत (extent) तक रोका जा सके जो कि वर्ग विहीन समाज के अस्तित्व के साथ विसंगतिपूर्ण न हो।.......

''एक सच्चा समाजवादी राज्य वह है जिसमें सभी व्यक्ति मजदूर हों और जिसमें न तो पूंजीवाद और न ही सामन्तवाद हो। इसमें लोगों के दो वर्ग नहीं हो सकते हैं। एक निम्न वर्ग ऐसा बना हुआ हो जिसमें लोग अपनी जीविका के लिए काम करते हों तथा एक उच्च वर्ग जिसके लोग दूसरों के काम पर जिन्दा हों।....

''समाजवाद के निर्माण तथा उसे सुचारू रूप से चलाने के लिये आवश्यक है कि राष्ट्र के उत्पादन तथा विनिमेय के सभी प्रमुख साधनों का मालिकाना और नियंत्रण

अपनी राज्य मशीनरी और सहकारी संस्थाओं के द्वारा किसानों का हो। आगे, यह आवश्यक है कि सत्ताधारी पार्टी किसानों और मजदूरों की पार्टी होनी चाहिये।

"(क) समाजवाद एक विश्वास है

समाजवाद जीवन जीने का तरीका है और एक समाजवादी समाज आसानी से अस्तित्व में नहीं आ सकता है। एक समाजवादी समाज का निर्माण केवल उन लोगों द्वारा हो सकता है जो समाजवाद के सिद्धान्तों पर विश्वास रखते हों और स्वयं उसको व्यवहार में लाते हों।" (Julius Nyerere, The Arusha Declaration , 5 Feb 1967, अनुवाद व जोर हमारा)

ज्यूलिस न्रेरे की समाजवाद की अवधारणा में निम्न बुर्जुआ विचारधारा में सर्वहारा विचारधारा के कुछ बिखरे-बिखरे टुकड़ों को यहां-वहां जोड़ दिया गया है। तमाम बातें विसंगतिपूर्ण हैं। एक तरफ ऐसी पार्टी, जो कि मजदूरों और किसानों का प्रतिनिधित्व करती हो, का शासन तथा दूसरी तरफ इस तरह की बातें कि समाज में दो वर्ग नहीं हो सकते, कि राज्य पर नियंत्रण किसानों का हो। समाजवाद में सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथ में होती है न कि किसानों के।

ज्यूलिस न्रेरे एक तरफ समाजवाद का आदर्शीकरण करते हैं और दूसरी तरफ चुपके से उसके मूल को इतना नरम और लचीला बना देते हैं कि वो समाजवाद बस नाम का रह जाता है। तंजानिया के बाद के इतिहास ने यही साबित किया भी। ज्यूलिस न्रेरे ने अपनी पार्टी को कम्युनिस्ट पार्टी की तरह संगठित किया परन्तु उसके मूल तत्वों को समाप्त करके। तंजानिया में दशकों तक एक पार्टी का शासन रहा है। ज्यूलिस न्रेरे को जबरदस्त जन दबाव तथा पूंजीपति वर्ग के अन्य धड़ों की बढ़ती आकांक्षाओं के कारण 1995 में हटना पड़ा। तंजानिया में बहुपार्टी व्यवस्था लागू हो गयी। वास्तव में, एक दलीय व्यवस्था की तरह बहुदलीय व्यवस्था भी सर्वहारा वर्ग तथा अन्य मेहनतकशों पर बुर्जुआ वर्ग की तानाशाही ही होती है। समाजवाद के नाम पर राजकीय पूंजीवाद कायम किया गया था। बाद के समय में बुर्जुआ वर्ग की बढ़ती महत्वाकांक्षा तथा साम्राज्यवादियों के दबाव के चलते अर्थव्यवस्था में ढांचागत समायोजन के प्रोग्राम के तहत संरक्षणवादी अर्थव्यवस्था के दौर से मुक्त पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख होना पड़ा है।

समाजवाद के नाम पर 'अफ्रीका की विशिष्ट परिस्थितियों' की दुहाई के तहत 'अफ्रीकी समाजवाद' को निम्न बुर्जुआ के उन तत्वों ने बहुप्रचारित किया जो स्वतंत्र होने वाले देशों में सत्ता के आकांक्षी थे। इस विचारधारा के लोग इस बात का विशेष तौर पर हवाला देते थे कि अफ्रीकी समाज यूरोपीय और एशियाई समाज से इस मामले में भिन्न रहा है कि यहां सामंतवाद या पूंजीवाद नहीं रहा है। अफ्रीका में कबीलाई समाज की बराबरी, भाईचारा और मानववाद औपनिवेशिक शक्तियों के आने के पहले तक कायम रहा है। अफ्रीकी समाज में औपनिवेशिक शक्तियों के आने से ही विकृति आयी। यदि औपनिवेशिक शासन का अंत कर दिया जाता है तो आदिम सुगन्ध वाले समाज को सीधे ही समाजवाद में रूपान्तरित किया जा सकता है।

'अफ्रीकी समाजवाद' के प्रवक्ता इस बात का मिथ्या प्रचार करते थे कि आधुनिक शताब्दियों में या औपनिवेशिक शक्तियों के आने से पूर्व अफ्रीकी समाज वर्ग विहीन समाज था या वहां दास समाज, सामंती समाज के चिह्न नहीं थे। अफ्रीका के तमाम हिस्से पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में सामंतवाद की गिरफ्त में थे। इसमें उत्तरी अफ्रीका से लेकर अफ्रीका के कई अन्य हिस्से शामिल थे।

जिन समाजों में कबीलाई संस्कृति के कुछ तत्व मौजूद भी थे तो उनमें भी इस बात के प्रमाण हैं कि वे अपनी स्वाभाविक गति से वर्गीय समाज में तबदील हो रहे थे। अभिजनों के साथ-साथ सामान्य जनों का विभाजन प्रारम्भ हो गया था। 'अफ्रीकी समाजवाद' तमाम किस्म के अन्य मिथ्या प्रचार के साथ यह दावा करता है कि सीधे ही समाजवाद में प्रवेश किया जा सकता है।

यहां उचित ही होगा कि एंगेल्स के उस जवाब को याद किया जाय जो उन्होंने त्काचोव को दिया था। त्काचोव रूस के बारे में दावा कर रहा था कि रूस में समाजवाद लाना पश्चिम यूरोप के देशों के मुकाबले बहुत आसान है। आसान होने की वजह त्काचोव यह बताता था कि रूस में ना तो पूंजीपति वर्ग है और न ही शहरी सर्वहारा वर्ग। रूस में सिर्फ राजनीतिक सत्ता के खिलाफ संघर्ष है क्योंकि वहां पूंजी की सत्ता है ही नहीं। राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने के साथ ही वहां समाजवाद कायम किया जा सकता है। एंगेल्स ने त्काचोव की आलोचना करते हुए लिखा था,

> "आधुनिक समाजवाद जो क्रांति चाहता है, वह संक्षेप में पूंजीपति वर्ग पर सर्वहारा वर्ग की विजय तथा समस्त वर्ग-विभेदों को मिटाकर समाज के नये संगठन की स्थापना है। यह इस क्रांति को सम्पन्न करने वाले सर्वहारा का ही नहीं, वरन् पूंजीपति वर्ग का भी तकाजा करता है जिसके हाथों में समाज की उत्पादक शक्तियां इस हद तक विकसित कर चुकी है कि वर्ग-विरोधों का अन्तिम रूप से उन्मूलन करना सम्भव हो जाता है। बर्बरों तथा अर्द्ध-बर्बरों तक के बीच भी इसी तरह कोई वर्ग-विभेद नहीं होते तथा हर जनता इस प्रकार की अवस्था के बीच से गुजरी है। इस अवस्था की पुनर्स्थापना की बात हमारे दिमाग में इस सीधी-सादी वजह से नहीं आ सकती कि समाज की उत्पादक शक्तियां ज्यों-ज्यों विकसित होती हैं, इस अवस्था के लाजिमी तौर पर वर्ग-विरोध पैदा होते हैं। समाज की उत्पादक शक्तियों के एक खास स्तर पर ही उत्पादन को इस हद तक बढ़ाना सम्भव होता है कि वर्ग-विभेदों के उन्मूलन में वास्तविक प्रगति हो सकती है, कि सामाजिक उत्पादन में गतिरोध, यहां तक कि ह्रास लाये बिना स्थायी हो सकती है। परन्तु उत्पादक शक्तियां केवल पूंजीपति वर्ग के जरिये ही विकास के इस स्तर तक पहुंच सकी हैं। इसीलिए पूंजीपति वर्ग समाजवादी क्रांति की उतनी ही आवश्यक पूर्व शर्त है जितनी आवश्यक पूर्व शर्त स्वयं सर्वहारा वर्ग है। इसलिए जो व्यक्ति यह कहता है कि क्रांति ऐसे देश में आसानी से सम्पन्न की जा सकती है जहां भले ही सर्वहारा वर्ग न हो, वहां पूंजीपति वर्ग भी नहीं है, वह यही साबित करता है कि उसे अभी समाजवाद की वर्णमाला सीखनी है।" (फ्रेडरिक एंगेल्स, रूस में सामाजिक सम्बंधों के विषय में', पेज 192.193, खण्ड-2,भाग-2, संकलित रचनायें तीन खण्डों में, हिन्दी संस्करण, प्रगति प्रकाशन मास्को, जोर मूल में)

'अफ्रीकी समाजवाद' के प्रवक्ताओं का सीधे समाजवाद में प्रवेश की बातें उतनी ही खोखली साबित हुई जितनी कि त्काचोव की बातें थी। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के बिना समाजवाद की लड़ाई न तो लड़ी जा सकती है और न ही समाजवाद, जो कि सर्वहारा वर्ग की तानाशाही है, कायम किया जा सकता है। वर्ग विहीन-शोषणविहीन समाज की स्थापना सर्वहारा वर्ग का ऐतिहासिक दायित्व है। सर्वहारा वर्ग ही एक मात्र इस बात की क्षमता रखता है कि वह ऐसे समाज की स्थापना कर सकता है। वह भी क्रमशः अपने वर्ग का विलोप करके।

जिम्बावे : एक उदाहरण के रूप में

जिम्बावे, निम्न पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में चले सशस्त्र राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष व इस संघर्ष के उपरांत निम्न पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों के सत्तारूढ़ होने तथा सत्ता हासिल करने के बाद एक-एक करके सभी क्रांतिकारी नारों अथवा उग्र सुधारों को धता बता देने के रूप में, एक शास्त्रीय उदाहरण के रूप में सामने आता है।

सशस्त्र संघर्ष की अगुवायी करने वाली पार्टी जिम्बावे अफ्रीकन नेशनल यूनियन (ZA N U या जानू) सत्ता हासिल करने के बाद शीघ्र ही नवोदित शासक वर्ग की पार्टी में तबदील हो जाती है। एक दशक से भी अधिक लम्बे समय तक यह पार्टी अपनी वाम लफ्फाजी से जनता को भ्रमित करने में सफल रही है। वाम लफ्फाजी के साथ दक्षिणपंथी रास्ते पर चलते हुये यह पार्टी पूंजीवाद के निर्माण में संलग्न रही है। गोरे भूस्वामियों की जमीन पर कब्जा करके उसे काले भूमिहीन लोगों के बीच बांटने का सवाल हो अथवा साम्राज्यवाद से संघर्ष का सवाल, हर मामले में ही इस पार्टी ने घोर अवसरवाद तथा समझौतापरस्ती का रुख अपनाया है। अप्रैल, 1980 में जिम्बावे ने रंगभेद तथा औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति पायी। परन्तु एक दशक के भीतर ही जिम्बावे के आम जन – मजदूर और किसान – छला हुआ महसूस करने लगे। फलस्वरूप, हड़ताल-विरोध-प्रदर्शन का सिलसिला शुरू हो गया। एक दशक के भीतर ही जनता की उम्मीदें वहम साबित होने लगी।

जिम्बावे वैसे तो पुर्तगालियों की नजर में सोलहवीं शताब्दी से चढ़ने लगा था परन्तु उसका उपनिवेशीकरण उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों तथा पहले से दक्षिण अफ्रीका में बसे गोरों के जिम्बावे में बसने के साथ हुआ। ब्रिटिश साऊथ अफ्रीका कम्पनी ने उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक से जिम्बावे के प्राकृतिक साधनों के दोहन के लिये रेल लाइनें बिछानी शुरू की। बड़ी-बड़ी जमीनों पर कब्जा करके उन पर गोरों को बसाना शुरू किया। सोने, क्रोमियम, निकिल जैसी बहुमूल्य धातुओं की खानों पर इसी कम्पनी का कब्जा था।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति होते-होते जिम्बावे में बसे यूरोपियों के बीच स्वशासन की मांग उठने लगी। 1923 में जिम्बावे स्वशासित ब्रिटिश उपनिवेश बन गया। 34,000 यूरोपियों के वोट से यह स्वशासन तय हुआ था। उस समय जिम्बावे में गोरे ही अपने आपको सभ्य मानते थे और अपने समाज को 'सभ्य समाज' के नाम से सम्बोधित करते थे। सम्पत्तिविहीन, अधिकारविहीन जिम्बावे की मूल आबादी यूरोपीय उपनिवेशवादियों के लिए घोर असभ्य थी, जिसे गोरों के 'एक हजार वर्ष' के शासन के द्वारा सभ्य बनाया जाना था। गोरों ने नारा दिया हुआ था 'समान अधिकार केवल सभ्य लोगों के ही हो सकते हैं'। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद और तेजी से गोरी आबादी की जिम्बावे में बढ़ोत्तरी हुई।

1965 में, इवान स्मिथ की सरकार ने इकतरफा तौर पर ब्रिटेन से आजादी की घोषणा कर दी। इसे यूनीलेटरियल डिक्लेरशन ऑफ इण्डीपेन्डेंस (U D I) कहा गया। ब्रिटेन व संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस शासन को अवैधानिक घोषित कर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये परन्तु ये प्रतिबंध औपचारिक ही साबित हुये।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षो तथा बीसवीं सदी में जिम्बावे में मूलत: आधुनिक वर्गो का उदय हुआ। सम्पत्ति के अधिकांश साधनों के यूरोपीयों के हाथों में होने के कारण काली आबादी के

बीच से पूंजीपति वर्ग का उदय होना सम्भव ही नहीं था। शिक्षा के सीमित प्रचार, रेल, खनन, खेती, बागवानी, दस्तकारी, व्यापार आदि गतिविधियों के बीच से काली आबादी के बीच से निम्न पूंजीपति वर्ग तथा शहरी-ग्रामीण सर्वहारा वर्ग का उदय हुआ। जिम्बावे के राष्ट्रीय नेता निम्न मध्यम वर्गीय या सर्वहारा वर्ग की पृष्ठभूमि से आये थे। राबर्ट मुगाबे के पिता देहात में बढ़ई थे और मुगाबे ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा मिशनरी स्कूल में पायी थी।

साठ के दशक में नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी (N D P) में विभाजन के फलस्वरूप जिम्बावे अफ्रीकन पीपुल्स यूनियन (ZAPU या जापू) का गठन हुआ। 1963 में जापू से अधिक जुझारू तत्व जो कि अपने-आप को मार्क्सवादी-लेनिनवादी मानते थे, अलग हो गये। इस नये संगठन के नेता नदाबानिनगी सिथोले और राबर्ट मुगाबे थे। मूलतः इसी संगठन जिम्बाबे अफ्रीकन नेशनल यूनियन (ZANU या जानू) के नेतृत्व में ही सशस्त्र राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष चला। जानू का मूलतः बड़े जनजातीय समूह स्होना (Shona) तथा जापू का छोटे जनजातीय समूह न्डेबेलेस (Nedebeles) में आधार था। सत्तर के दशक में जापू को सोवियत संघ तथा अन्य यूरोपीय देशों तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का समर्थन हासिल था। जानू को चीन तथा अफ्रीका के क्रांतिकारियों तथा अन्य राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के नेताओं तथा योद्धाओं का समर्थन हासिल था। जानू को ही जिम्बावे में व्यापक समर्थन हासिल था। दोनों ही संगठनों, जापू और जानू पर स्मिथ की सरकार ने प्रतिबंध लगा दिये। दोनों ही संगठनों ने जाम्बिया व मोजाम्बिक से जिम्बावे की गोरी सरकार के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष छेड़ हुआ था। यह संघर्ष गुरिल्ला प्रकृति का था।

1972 के बाद जानू के नेतृत्व में चलने वाले संघर्ष ने गति पकड़नी शुरू की। इयान स्मिथ की सरकार ने जिम्बावे की आम जनता का भयानक दमन जारी रखा। सशस्त्र संघर्ष शुरू होने के बाद हजारों लोगों की हत्या, इयान स्मिथ की सेनाओं ने की। कई हजार लोगों को जेल में ठूंस दिया गया। एक अनुमान के अनुसार सत्तर के दशक में चालीस हजार से अधिक नागरिक मारे गये। देहाती क्षेत्रों में जहां पर काली आबादी की मुख्य रिहायश थी, लोगों के घर उजाड़ दिये गये और पलायन करने के लिए मजबूर कर दिया गया। 1976 में जानू और जापू ने मिलकर देशभक्त मोर्चे (Patriotic Front- PF) का गठन कर लिया।

जानू और जापू के सशस्त्र संघर्ष और बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण इयान स्मिथ को पीछे हटना पड़ा। फरवरी, 1980 में हुये चुनाव के जरिये सत्ता जानू पार्टी के हाथ में आ गयी। इन चुनावों में जानू को भारी सफलता मिली। अप्रैल,1980 को जिम्बावे की स्वतंत्रता को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिल गयी।

1980 से 1987 के बीच जानू और जापू के बीच में प्रतिद्वन्द्विता चलती रही। नव प्राप्त स्वतंत्रता के तुरन्त बाद स्होना और न्डेबेलेस जनजातीय समूह में तनाव फूट पड़ा। इस तनाव में 5000 से ज्यादा नागरिक मारे गये। 1987 में जापू का जानू में विलय हो गया और नये संगठन का नाम जानू (पापुलर फ्रंट) रखा गया और इस तरह से राबर्ट मुगाबे के नेतृत्व में जिम्बावे में एक दलीय शासन की स्थापना हो गयी। तब से लेकर अब तक तमाम किस्म के विरोधों के बावजूद जिम्बावे की सत्ता राबर्ट मुगाबे के हाथ में रही है। 1990 के बाद पुनः बहुपार्टी व्यवस्था लागू की गयी। '90 के दशक में जिम्बाबे यूनिटी मूवमेंट (Z U M), जानू (न्डोंगा), फोरम पार्टी ऑफफ जिम्बाबे, मूवमेंट फार डेमोक्रेटिक चेंज (M D C) आदि कई पार्टी बनी और बिखरी। नवगठित एम.डी. सी. ही प्रमुख विपक्षी दल के रूप में 2005 के चुनाव में उभरी है। सत्ता जानू के हाथ में ही है।

भू स्वामी गोरों की जमीन पर कब्जा करके उसे जिम्बावे में भूमिहीनों के बीच बांटने जैसे कदमों के साथ समाजवाद की बात करने वाली जानू पार्टी ने सत्तारूढ़ होते ही समझौतापरस्ती का रुख अपनाया। राबर्ट मुगाबे ने जिम्बावे में रह रहे गोरे भूस्वामियों (व उन्हें भी जो ब्रिटेन या अन्य देशों में रहते हुये जिम्बावे की जमीनों पर कब्जा किये हुये थे) तथा खानों-कारखानों पर कब्जा किये हुये गोरे पूंजीपतियों को आश्वासन दिया कि उन्हें नये जिम्बावे में किसी भी तरह के भेद-भाव का शिकार नहीं होना पड़ेगा। राबर्ट मुगाबे ने वास्तव में उन्हें संरक्षण भी दिया। ऐसा राबर्ट मुगाबे ने अपनी समझौतापरस्त नीति के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी तथा साम्राज्यवादियों के दबाव में किया।

राबर्ट मुगाबे ने अपने शासन काल में 'वाम कथनी दक्षिण करनी' (talk left act right) की नीति अपनायी। इस बात का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है। राबर्ट मुगाबे के नेतृत्व में चले लम्बे सशस्त्र संघर्ष तथा 20 साल से अधिक के शासन काल के बावजूद आज भी जिम्बावे की 70 प्रतिशत भूमि पर एक फीसदी लोगों का कब्जा है। सन् 2000 की राबर्ट मुगाबे की सारी धमकियों तथा ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया की टेड़ी भंगिमा के बीच मामूली भूमि पुनर्वितरण हुआ और उसमें भी अधिकांश भूमि जानू पार्टी के कार्यकर्ता और समर्थकों को हासिल हुयी। राबर्ट मुगाबे का यह प्रयास वामपंथी भूमि सुधारों के बजाय अपनी तथा अपनी पार्टी के खोते जनाधार को बचाने तथा शहरी व ग्रामीण मजदूरों के बढ़ते असंतोष को दबाने का प्रयास अधिक था।

राबर्ट मुगाबे ने अपनी पार्टी का गठन कम्युनिस्ट पार्टी की तर्ज पर तो किया है परन्तु वह सर्वहारा वर्ग की पार्टी होने के स्थान पर एक समय निम्न पूंजीपति वर्ग की पार्टी थी और आज यह जिम्बावे के पूंजीपति वर्ग, नौकरशाहों तथा सैनिक अफसरों की पार्टी है। मुगाबे की पार्टी शहरी-ग्रमीण सर्वहारा के स्थान पर पूंजीपति वर्ग के विभिन्न हिस्सों का सामूहिक प्रतिनिधित्व करती है। यह बात ठीक है कि आज भी उसका शहरी निम्न पूंजीपति वर्ग के साथ-साथ देहात में विशाल जनाधार मौजूद है।

राबर्ट मुगाबे के शासन पर एक बहुत ही सटीक टिप्पणी, उन्हीं की पार्टी के वामपंथी सदस्य (जो कि जिम्बावे की संसद के भी सदस्य है) लाजेरूस न्यजेरेबेनी ने 1989 में की थी

> ''समाजवाद का कार्यक्रम अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया है। आप एक ऐसी पार्टी में समाजवाद की बातें नहीं कर सकते हैं जिसका नेतृत्व करने वालों के पास जमीन के विशाल भूखण्ड हों और जो भारी संख्या में सस्ते मजदूरों से काम लेते हैं। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी जब जंगलों में लड़ाई लड़ रहे थे तो वे व्यवस्था में सिर्फ बाधा नहीं डालना चाहते थे बल्कि वे इस व्यवस्था को ही ध्वस्त करना चाहते थे। और अब हम क्या देख रहे हैं? नेतागण उन चीजों को लागू कर रहे हैं जिन चीजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी गयी थी...'' (पैट्रिक बाण्ड द्वारा उद्धृत, 'Political Rewakening in Zimbabwa, Monthely Review, vol-50 number-II, April-1999')

वास्तव में राबर्ट मुगाबे अस्सी के दशक में निम्न पूंजीपति वर्ग के जिस समाजवाद को लागू कर रहे थे वह समाजवाद नहीं बल्कि राजकीय पूंजीवाद की ही एक किस्म थी। इस पूंजीवाद ने जानू पार्टी के सदस्य और नेताओं, जानू के सैनिक संगठन के अफसरों तथा निम्न पूंजीपति वर्ग के तमाम सदस्यों को इस बात का आधार मुहैया कराया कि वे दौलत इकट्ठा कर सकें और अपनी वर्गीय हैसियत को ऊपर उठा सकें। यह एक अल्पसंख्यक वर्ग है जो कि जिम्बावे के मेहनतकशों के

शोषण पर जिन्दा है। इस नवोदित शासक वर्ग का जनता से अलगाव बढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि जिम्बावे में मजदूरों व अन्य मेहनतकशों का क्षोभ व आक्रोश हड़ताल और विरोध प्रदर्शन के रूप में समय-समय पर फूटता रहा है।

पहले चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना तथा 1990 में सोवियत संघ के पतन ने जिम्बावे पर व्यापक प्रभाव डाला। चीन ने जिम्बाबे में रेल निर्माण से लेकर कई अन्य तरीकों से, जिम्बावे की सहायता की है। पहले जहां समाजवाद के समय इसका लक्ष्य राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षो की मदद करना था वहीं अस्सी के दशक में यह चीन के बाजार के विस्तार तथा राजनैतिक प्रभाव बढ़ाने का जरिया बन गया।

अपनी स्वतंत्रता के एक दशक बाद ही जिम्बावे का आर्थिक ढांचागत समायोजन प्रोग्राम को अपनाना पड़ा। पूरे अफ्रीका महाद्वीप पर साम्राज्यवादियों तथा उनकी संस्थाओं का 'अच्छे शासन' (Good Governance) के लिये दबाव है। जिसका सीधा सा अर्थ है कि सरकार सामाजिक सेवाओं से हाथ पीछे खींचे, सब्सिडी घटाये। निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण की नीतियां लागू करे और उसके तहत मुद्रा अवमूल्यन, सीमा शुल्कों में कटौती आदि कार्यक्रम लागू करे। समाजवाद की लफ्फाजी करने वाली राबर्ट मुगाबे की सरकार 1990 में विश्व बैंक-अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष निर्देशित कार्यक्रम को अपने वर्गीय हितों के कारण लागू करना शुरू कर दिया।

नतीजे सामने थे। 1997 के अंत में जिम्बावे की आबादी का 60 फीसदी हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर कर रहा था। सामाजिक असमानता बढ़ती जा रही है, जिम्बावे की आबादी का ऊपरी दस फीसदी हिस्सा सभी वस्तुओं और सेवाओं के 34 फीसदी और जबकि समाज का निचला हिस्सा केवल 3 फीसदी का इस्तेमाल करता है। अस्सी के दशक में हासिल की गयी औसत आयु में वृद्धि, शिशु मृत्यु दर में कमी, प्राइमरी स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या में दो गुने की वृद्धि जैसी उपलब्धियों में नब्बे के दशक में गिरावट दर्ज की गयी। सालाना घरेलू उत्पाद की दर में गिरावट के साथ-साथ 1997 में जिम्बावे की मुद्रा डालर में 75 फीसदी की गिरावट दर्ज की गयी। बेरोजगारी में तेज वृद्धि के साथ निरपेक्ष रूप से मजदूरी नीचे गिर रही है। इन्हीं हालात में जिम्बावे के राष्ट्रपति ने दुबारा से वाम लफ्फाजी शुरू की और ऐसी कुछ भूमि चिह्नित करके उसका बंटवारा कराया।

कुल मिलाकर, जिम्बावे का आजादी के बाद का सफर निम्न पूंजीपति वर्ग के राष्ट्रवाद और समाजवाद की परिणति के रूप में सामने आता है। यह सफर निम्न पूंजीपति वर्ग से पूंजीपति वर्ग में तबदील हुये लोगों के लिए जो कि शासक वर्ग के हिस्से बन गये हैं के लिए उत्सव गीत है तो शेष समाज के लिए शोक गीत साबित हुआ है।